1954

और गोकुल से लौटने पर फिर ज्यों की
त्यों वापिस लग जाना; शैशव अवस्था
में ही गोकुल में स्तन-पान द्वारा पूतना
के प्राणों को खींच कर मार डालना।
एवं अन्य राक्षसों का संहार; ऊखल से
बंध कर उसे घसीटते हुए चल कर
यमलार्जुनोद्धार; वृन्दावन में कालिय नाग
के शीश पर नाच कर घायल कर यमुना
से निकालना और उसके सीस पर अपने
चरण-चिन्हों को अंकित कर उसे धन्य
करना; दो बार दावानल को मुख में पी
जाना; ब्रह्माजी द्वारा गोप बालकों एवं
गौ वत्सों को हर लेने पर एक वर्ष तक
प्रत्येक गोप बालक और गो-वत्सों के अलग
अलग रूप में उतने ही बालक और बछड़े बने
रहना; सात दिनों तक गोवर्धन पर्वत को अपनी
अंगुली पर उठाये रखना; नन्दजी को वरुण के
यहां से लाना एवं सर्प के मुख से निकालना
रास लीला में जितनी गोपियें उतने की

कृष्ण का नहा जाना, पर्वत दावानल पान, मुख में सारे ब्रह्माण्ड दिखाना; मरे हुए गुरुपुत्र और देवकी के छ पुत्रों को लाकर देना इत्यादि कथाएं सुनते से भी कृष्ण की प्रभुता भगवत्ता का बोध होता है।

*(एम ए 1983) शंका होती है कि गीता में प्रभु के वचन [जो जिस प्रकार मुझे भजता है उसको मैं उसी प्रकार भजता हूं और यहाँ "मुझे भजने वालों को भी मैं नहीं भजता हूं" दोनों ही परस्पर विरोधी वचन क्यों हैं? किन्तु गूढ़ विचार करने पर पता चलता कि विरोध नहीं है — गीता के वचन का मतलब है कि जो जितना अधिक प्रगाढ़ भक्त होता है उसकी उतनी अधिक चिंता और सार सम्हाल रखता हूं। किन्तु यहाँ गोपियों के तीन प्रश्नों का उत्तर देते हुए कहते हैं कि मैं परम कारुणिक हूं अतः मुझे भजने वालों को भी मैं प्रगाढ़ रूप से नहीं भजता ताकि उसकी

"ये यथा मां प्रपद्यन्ते तांस्तथैव भजाम्यहम्" (गी. 4/11)

1986

मनोवृत्ति निरंतर मेरी ओर लगी रहे और उसका परम कल्याण होता रहे ([illegible])

जब देवर्षि नारद के मन में जिज्ञासा उठी कि १६१०८ पत्नियों के साथ श्री कृष्ण किस प्रकार एक साथ गृहस्थ जीवन निभाते हैं तब प्रभु के विभिन्न पत्नियों के महलों में अलग अलग कृष्ण को एक ही समय अलग-अलग व्यवहार करते पाकर नारद विस्मित रह गये — यह है कृष्ण का ऐश्वर्य

कंस के राज्य के असुरों का नाश करके महाभारत युद्ध रचाकर सारे त्रिभुवन के तो योद्धाओं को एक ही युद्ध भूमि एकत्रित करके सब का संहार करवाया। इतना ही नहीं अपने ही कुल यदुवंशियों का भी विप्र शाप दिलवा कर नाश करवाया और पृथ्वी को असुर-विहीन की — यह है प्रभु की वाणी "परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्" (गीता ४ श्लो ८) धर्मसंस्थापनार्थाय संभवामि युगे युगे (गीता ४ श्लो ८)

1987

अनुरूप को निरपेक्ष आचरण - प्रभु की समदर्शिता कि अपने पुत्रों पौत्रों के लिये भी पक्षपात नहीं किया।

भ्रमवश जरा व्याध की बाण लगने से प्रभु के पैर में लगने पर जब उसने अत्यंत पश्चाताप करते हुए क्षमा मांगी तब प्रभु का यह कहकर कि मेरी इच्छा से ही ऐसा है उसे अपने धाम भेज देना - यह प्रभु की क्षमाशीलता एवं उदारता।

देवकी के सातवें गर्भ को आकर्षण द्वारा गोकुल में वसुदेव जी की पत्नि के गर्भ में प्रवेश कराना और इस प्रकार बलराम जी (संकर्षण) को कंस के चंगुल से अलग रखना यह है प्रभु की अद्भुतता

1988

[illegible]

गोकुल में गोपों और गोपिकाओं के रूप में देवताओं और भगवान के पार्षदों ने ही श्री कृष्ण की लीलाओं में भाग लेने के लिये जन्म लिया था। मुनियों और सिद्धों ने भी विभिन्न तन धार कर जन्म लिया था यहां तक कि वृक्ष भी बने थे स्थिर भाव से प्रभु के दर्शन की अभिलाषा में।

प्रभु को मथुरा ले जाने के लिये वृन्दावन के मार्ग में कृष्ण-चिन्तन में ही मग्न हो जो जो कामनाएं अक्रूर ने मन में की थी सारी की सारी ज्यों की त्यों प्रभु ने पूरी कीं और मथुरा के मार्ग में अपने दिव्य रूप के दर्शन कराये।

ज्ञानी भक्त उद्धव जी को गोपियों और माता पिता को ध्यान का उपदेश द्वारा कर विरह जनित ताप शांत कराने का आदेश देकर प्रभु ने भेजा किन्तु उद्धव जी ने जब विरह व्यथा की निस्स्वार्थता एवं

1989

प्रेम की प्रगाढ़ता को देखकर प्रसन्न
ज्ञानोपदेश भूलकर गोपियों के प्रेम को
श्रेष्ठतर मानने लगे।

गोपबालकों के साथ प्राकृत बालक की सब तरह की क्रीड़ाएं करना और गोपियों की आन्तरिक इच्छा होने पर उनके घरों में जा जाकर माखन चुरा कर खाना, उनके इशारे पर नाच गा कर उनकी हार्दिक इच्छा पूरी करते रहे - यह है प्रभु की भक्तों की इच्छा पूरी करने का जन रंजन स्वभाव एवं उनकी प्रेम परवशता।

अकिंचन विप्र बाल सखा सुदामा को द्वारकाधीश द्वारा गले लगाना, अपने हाथों उसके पैर धोना, चिथड़े में बंधे हुए चिउड़े की सौगात का छीन कर प्रेम पूर्वक खाना और बदले में परोक्ष रूप में अतुल सम्पत्ति दे देना - यह प्रभु की उदारता और दीनबंधुता है। उधर सुदामा का यह सोचते जाना कि

1990

यह हितचिन्तन है धन मिलने से उन्मत्त हो गया ऐसा कोई नहीं कहेगा। इसलिये कुछ भी नहीं दिया। एवं महल में पहुँच कर उसे अतुल सम्पत्ति को पाकर भी निर्लिप्त भाव से रहना - यह भक्त का निस्पृह और निर्लिप्त जीवन का आदर्श है।

श्री रामचरित मानस में मर्यादा पुरुषोत्तम श्री राम के चरित्र हैं और वह मर्यादा-प्रधान ग्रंथ है। श्रीमद्भागवत के दशम स्कन्ध और एकादश स्कन्ध में लीला पुरुषोत्तम श्री कृष्ण के चरित्र वर्णित हैं लीला-प्रधान है। परमानन्द ~~[illegible]~~ और भक्त की प्रसन्नता के लिये श्री कृष्ण सब कुछ करते हैं। परमार्थ सम्बन्धी वचन दोनों में बहुत मिलते जुलते हैं। कुछ श्लोकों के ज्यों ही उतार आये हैं।

भक्ति मनसा वाचा कर्मणा की जाती है मनसा से श्री हरि की स्मृति, उनका चिंतन और उन्हीं की शरणागति। वाचा उनके नाम गुण धर्मों को गाना। कर्मणा यानि कर्मेन्द्रियों द्वारा - यानि कान, आँख, हाथ पैर द्वारा।

<u>श्रवण</u> - भक्ति की सबसे पहली सीढ़ी है। किसी भी चीज के विषय में सुनने के बाद ही तो उसे देखने और प्राप्त करने की इच्छा होती है तब अन्य कदम उठाये जाते हैं। दत्तचित्त और एकाग्रता से सुनने से ही उसका सार रस प्राप्त होता है। इस तत्व पर विश्वास करने के लिये भागवत-सप्ताह पारायण सुनने से परीक्षित यहाँ तक कि क्रूर प्रेत धुंधकारी की मोक्ष का प्रसंग निर्विवाद है। सुनने को मिले एवं वहीं जहाँ श्री हरि की लीलाओं एवं सुयश की चर्चा होती हो यानि संतों के पास - इस संत-सम्पर्क से भक्ति पनपने

1992

जगती है और जीवन का कल्याण हो जाता है। भजन में एक विशेषता और है कि निरक्षर और मूर्ख की भी पहुँच होती है क्योंकि कथाओं को सुनने से समझ सकता है

प्रथम भगति संतन्ह कर संगा। दूसरि रति मम कथा प्रसंगा॥
(मान. 3-34)

गोपी-भाव यानि प्रेम-भक्ति यानि कान्त-भाव — यह भक्ति की सबसे अन्तिम सीढ़ी है — गोपियाँ गृहस्थी के सारे धंधे पूरी तरह से करती रहतीं किन्तु उनका मन श्रीकृष्ण में लगा रहता और उनकी विविध लीलाओं का ध्यान करती रहतीं "करहु करम करें विधि नाना, मन राखहु जहाँ कृपानिधाना।" यह है कीर्तन स्मरण उनका। प्रभु की बंशी ध्वनि सुनकर रास की रात में सब कुछ धन्धों को त्यागो छोड़कर यहाँ तक कि पतियों एवं बच्चों को भी छोड़कर भाग चलीं श्री कृष्ण की ओर — यह है उनका पूर्ण किसी से कुछ भी लगाव नहीं है। आखिर प्रभु के समझाने पर भी

लोलुपता - यह है अनन्यता, समर्पण एवं प्रभु प्राप्ति की प्रगाढ़ - लिप्सा। गोपियों की इच्छा पूरी करने प्रभु उनके घरों में जा जाकर उनकी मनोवांछित लीलाएँ करते - यह बताता है "घर में रहना पाप नहीं है किन्तु घर को मन में रखना ही पाप है" यह महान सिद्धान्त भागवत बताती है। गोपियों की मान्यता थी कि जहाँ हम जाती हैं हमारे कृष्ण हमारे साथ हैं। श्री कृष्ण लीलाओं का चिंतन करती गोपियाँ अपने स्वरूप में भी परमात्मा का अनुभव करती हैं "लाली देखन मैं गई, मैं भी हो गई लाल" यानि देखने वाला ईश्वर को देखते ही ईश्वरमय हो जाता है। संसार के विषय-सुखों के प्रति वैराग्य हो और प्रभु के प्रति प्रेम जागे यही है भागवत की कथा - लीलाओं का उद्देश्य। प्रभु जीव को अपनाकर अपने स्वरूप का दान करते हैं तभी जीव पूर्ण होता है। भक्ति मार्ग की आचार्या गोपियाँ हैं।

भक्ति केवल मंदिर में ही नहीं, जहाँ भी रहें वहीं हो सकती है। चौबीसों घंटे करनी चाहिये। ईश्वर का स्मरण छोड़ना नहीं चाहिये। मानसिक सेवा सब से श्रेष्ठ है।

दुःख और सुख – सुख का साक्षी जीव है दुःख का साक्षी ईश्वर है। ईश्वर जिसे भी मिले हैं दुःख में ही मिले हैं कारण सुख और ऐश्वर्य में मनुष्य अभिमान में डूबा रहता है उसे ईश्वर का स्मरण ही नहीं आता। अभिमान प्रभु का आहार है अतः प्रभु जिस पर कृपा करते हैं उसकी सम्पत्ति पहले छीन लेते हैं ताकि प्रभु-स्मरण से कल्याण हो। दुःख दूर करने का परमात्मा का स्वभाव है अतः प्रभु वन्दनीय हैं। मन से वंदना करने से पाप जलते हैं। नमन (प्रणाम) प्रभु को बंधन में डाल देता है। हाथ जोड़ने का अर्थ है मैं इन हाथों से सत्कर्म करूँगा। मस्तक झुकाने का अर्थ है अपनी बुद्धि-शक्ति को प्रभु को अर्पित करें

१९९५

स्वयं को प्रभु का दास समझना | बन्धन से हमारे अभिमान का भार भी कम होगा | दुःख दुःख संचित कर्मों का फल है | अतः सुख भोग से शुभ-कर्म का दुःख भोगने से अशुभ कर्म फल का नाश होता है |

मुचुकुन्द से देवगण कहते हैं मोक्ष को छोड़ कर अन्य वर मांगो क्योंकि मोक्ष देने में तो एकमात्र विष्णु ही समर्थ हैं (५१-२०)

पाँच महापाप बताये हैं - शराब पीना, ब्रह्म हत्या, सुवर्ण-चोरी, गुरु-पत्नि गमन, विश्वास-घात (महात्म्य-४-१३)

कलि-युग के पाँच वास-स्थान :- जुआ शराब, स्त्री-संग, हिंसा, धन (सोना) (१७-३८)

वैरागी और अभय पद के इच्छुक को श्री हरि का नाम संकीर्तन ही करना चाहिये (२-१-११)

१९९६

अंतकाल में वैराग्य द्वारा अपने देह, कुटुम्ब का मोह त्याग कर श्री हरि-नाम सुमरे (१-१५)

जिससे श्री हरि में प्रेम हो वही धर्म श्रेष्ठ है (२-२-३४)

इसलिए सदा और सब प्रकार हरि का ही श्रवण कीर्तन और स्मरण करो (२-२-३६)

प्रेमपूर्वक हरि-स्मरण से वासनाएँ मलिन नहीं होतीं, चित्त असत् विषयों में नहीं जाता और इन्द्रियाँ असत् मार्ग में नहीं जातीं (२-६-३३)

श्री हरि तुलसी की सुगंध का ही अधिक मान करते हैं (३-१५-१९)

~~क्षि~~ भक्त की इच्छित वस्तु हरि देते हैं (४-९-३४)

कुपुत्र के कारण दुःखमय हो जाने से पुरुष को वैराग्य हो जाता है जो कल्याण का मार्ग है (४-१३-४६)

कोई भी कर्म हो, मृत्यु के बाद, उसे करने वाले, सीख देने वाले, अनुमोदन करने वालों को समान फल मिलता है (४-२१-२६)

आधिदैविक, आधिभौतिक, आध्यात्मिक में से किसी एक दुःख से भी सर्वथा छुटकारा नहीं हो सकता (४-२९-३२)

श्री हरि की पूजन करने से सब की पूजन हो जाती है (४-३१-१४)

प्रारब्ध क्षय करने के लिये सुख दुःख दोनों ही भोग लेना चाहिये (५-१०-१४)

श्री हरि के नाम और गुणगान सब से बड़ा प्रायश्चित है। (६-२-९ से १२)

सुख की प्राप्ति और दुःख की निवृत्ति के लिये सभी प्रयत्न करते हैं किंतु उन कर्मों से न तो सुख मिलता और न दुःख ही दूर होता (६-१६-६०)

पति-पत्नि में से किसी एक द्वारा किया शुभ कर्म दोनों को फल देता है (६-१९-१८)

भीतर से विरक्त और ऊपर से रागी के समान आचरण करे (७-१४-५)

कार्य जैसे शान्ति से सिद्ध होते हैं वैसे क्रोध से सिद्ध नहीं होते (८-६-२४)

१९१४

कोई बड़ा काम सिद्ध करना हो तो शत्रु से भी मेल कर लेना चाहिये (८-६-२०)

श्री हरि की ही भक्ति उपास्य है और किसी देवता की उपासना नहीं (८-१६-२१)

समदर्शी होने पर भी प्रभु सबको उनकी भावनाओं के अनुसार ही फल देते हैं (८-२३)

श्री हरि नाम का कीर्तन सभी त्रुटियों को पूर्ण कर देता है। (८-२३-१६)

द्वेष करने वाले को ही दूसरों से भय होता है। (१०-१-४४)

पुरुष को अपनी माता, बहिन और पुत्री के पास भी एकांत में नहीं बैठना चाहिये (९-१९-१७)

श्री हरि क्षमाशीलों पर शीघ्र प्रसन्न होते हैं (९-१५-४०)

भिन्न प्रारब्ध वाले प्रियजनों का एक साथ रहना संभव नहीं है (१०-५-२५)

प्रभु भक्तों के वश है जिस सुगमता से भक्तों को प्राप्त होते हैं उतने अन्य किसी को भी नहीं (१०-९-१९)

ऐश्वर्य के समय स्त्री, जुआ, शराब की सुधि कराती रहती है (१०-१०-८) दरिद्र पर-पीड़ा को समझता है उसमें हिंसा, मद, अनम्रता नहीं रहती। दैव योग से

जो कष्ट मिलता है वही उसका परम तप है। संतों का भी समागम दरिद्र को ही होता है (१०-१०-१८)
स्थान-प्राप्ति के प्रयास को छोड़कर अपने स्थान पर ही रहते हुए श्री हरि सम्बन्धी कथा वार्ता सुनने वाला हरि को जीत लेता है (१०-१४-३
श्री हरि की कथा का प्रचार और वर्णन करने वाले ही सबसे अधिक दानी हैं (१०-३१-९)
श्री हरि के चरन विपत्ति में स्मरण करने योग्य है (१०-३४-१३)
मनुष्य के संसार-बंधन का अंत होने को होता है तभी उसकी बुद्धि हरि-भक्ति में लगती है (१०-४०-२८)
समदर्शी होते हुए भी प्रभु भजने वाले को भजते हैं (१०-४१-४८)
श्री हरि के लिये अपने सारे लौकिक पारलौकिक धर्मों को छोड़ने का भार प्रभु स्वयं लेते हैं (१०-४६-६)
अज्ञानी भी हरि-भजन करे तो प्रभु उसका परम कल्याण करते हैं (१०-४६-५८)
युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ में श्रीकृष्ण ने अतिथियों के पैर पखारे थे (१०-७५-५)
भगवान ही जीवों का संयोग वियोग कराते हैं (१०-८२-४३)

२०००

प्रभु जिस पर कृपा करते हैं उसका सब धन धीरे धीरे हर लेते हैं और उसके बंधुगण भी उसे छोड़ देते हैं। धन संग्रह में प्रसन्न वह विरक्त हो भक्तों से मेल करता है तब प्रभु कृपा करते हैं (१०-८८-८)

निष्काम भक्ति सुगमता से हरि को प्राप्त कराती है एवं भक्त को पवित्र करती है। (१०-१४-२०/२१)

हरि को स्मरण करने वाला हरि में लीन हो जाता है (१०-१४-२६)

दशम स्कंध में भक्ति के विभिन्न प्रसंगों के उच्चतम आदर्शों के दिव्य दृष्टांतों की माला पिरो कर प्रभु के चरन कमलों पर चढ़ाई गयी है जिसकी सुवास से रसिक-हृदय मनुष्य भौंरे बन उस रसराज के चरणारविन्दों के रसामृत का पान कर जीवन सार्थक कर सकें।

अच्युतं केशवं राम नारायणं।
कृष्ण दामोदरं वासुदेवं हरि।।
श्रीधरं माधवं गोपिकावल्लभं।
जानकी नायकं रामचन्द्रं भजे।।

सं० सं० ९१ २००१

२६-७ / ८५ नीलाम्बुजश्यामलकोमलाङ्गं
सीतासमारोपितवामभागम्।
पाणौ महासायकचारुचापं
नमामि रामं रघुवंशनाथम्॥
(अयोध्याकाण्ड मंगलाचरण ३)

इस श्लोक में राम और सीता दोनों के चरित वर्णित किये गये हैं। इसमें सातों काण्डों का अनुसरण किया गया है। एक एक चरण में संक्षिप्त रूप से एक एक लीला सूचित करते हुए चार चरणों में सारी रामचरित की झलक दिखाते हुए श्री रामजी के स्वरूप की वन्दना की गई है।

(१) नीलाम्बुज श्यामल कोमलाङ्गं — इन पदों में जन्म और बाललीला सूचित है क्योंकि अंगों की कोमलता जन्म और बाल्यावस्था ही से रहती है।

(२) सीतासमारोपितवामभागम् — इस पद में श्री सीताजी को वामभाग में विराजमान कह

सीताजी के साथ कर समस्त विवाहलीला और विवाहित कुलवधू रूप अयोध्या पधारने की लीला कहते हुए श्री राघव युगल जोड़ी की वन्दना है। इन दोनों पदों में समस्त बाल काण्ड का चरित्र है।

(3) पाणौ महासायक चारु चापं - इस तीसरे चरण में शार्ङ्ग धनुर्धारी श्री शार्ङ्गधर श्री राम के वीर रूप की वन्दना है। "परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्। धर्मसंस्थापनार्थाय संभवामि युगे युगे (गीता ४/८) इस अपने घोषणा को पूर्ण रूपेण चरितार्थ किया है अपने चौदह वर्ष की अवधि में ही अतः अयोध्याकांड से लेकर लंकाकांड की समाप्ति तक के सारे चरित्र कहकर प्रभु की वन्दना की है। साधुओं का भय हर कर एवं दुष्ट राक्षसों का विनाश किया है जटा-मुकुट धारी मुनि वेष परिधान (वस्त्र) पहने श्री राम के वनवास की महिमा है।

(४) नमामि रामं रघुवंशनाथम्। — इस चतुर्थ चरण में रघुवंशनाथ कह कर रावण वध के पश्चात राज्यासीन राजा श्री राम की वन्दना है। इसमें आरण्यकांड का समस्त चरित्र सूचित कर दिया गया।

अयोध्याकांड के मंगलाचरण में तीन श्लोक हैं कारण श्री राम, लक्ष्मण और सीता तीनों ही अयोध्या से वन गये थे, और तीनों साथ ही अयोध्या लौटे और तीनों के ही चरित्र हैं।

२००५ सं०/तं० १२

२८-७-९५ सुमिरत राम-चरन जिन्ह रेखा (मा ३-३०

परब्रह्म श्री राघवेन्द्र सरकार १४ वर्ष-वनवास की अवधि में नरलीला कर रहे हैं - वनवास की तेरहवीं साल बीत चुकी - रावण-वध की नींव पड़ चुकी। आकाश मार्ग से सशंकित व्याकुल चित्त राक्षसराज रावण अपहृता सीता को हर ले जा रहा है।

सीता की रक्षा-याचना-भरी करुण पुकार गीधराज जटायु के कानों में पड़ते ही आगा देखा न पीछा टूट पड़ता है जटायु रावण पर - उसके केश पकड़ पटक कर सीता को पास में सुरक्षित रख फिर भिड़ जाता है रावण के साथ युद्ध में। किन्तु बेमेल युद्ध है यह पक्षी का काट डालता है पंख रावण। पंख कटते ही पक्ष-हीन पक्षी विवश हो प्रभु श्रीराम का स्मरण करता हुआ गिर पड़ता है और मौका पा रावण सीता को ले भागा।

2005

लहू लुहान हो रहा है जटायु का शरीर
अन्त समय निकट है - दम टूटा ही चाहता है
किन्तु भक्त राज पक्षी इस वेदनामय समय
में भी सीता हरण का आंखों देखा समाचार
प्रभु को बता देने की मनोकामना
से प्रभु के श्री-चरणों में ध्यान लगाये श्री
चरणों दिव्य सुन्दर रेखाओं का बड़ी
एकाग्रता के साथ दत्तचित्त हो स्मरण कर
रहा है - क्योंकि मनुष्य की मृत्यु-काल की
मनोकामना को प्रभु अवश्य पूरी करते हैं
और हुआ भी ऐसा प्रभु सानुज पधारते हैं
जटायु के सामने।

पंचवटी प्रवेश के समय प्रभु-श्रीराम
की जटायु से भेंट हो जाती है और दृढ़ मैत्री
भी हो जाती है। इस समय सब से पहली बार
भूमि पर अंकित प्रभु-पद-रेखाओं को
देखा जटायु ने। पगवली के चिन्हों की
रेखाएँ महीन होती हैं किन्तु जटायु ने
अपनी पैनी दृष्टि से बहुत ही बारीकी से

२००८

देखकर मोहित हो गया वह और
उनको अपने नयन पथ ला हृदय में
स्थापित (अंकित) कर स्वयं को धन्य
मानने लगा। सच में ये रेखाएं उसके
(निधि) जीवन की सबसे प्यारी वस्तु हो गयीं।
सबसे प्रिय वस्तु ही मृत्यु समय याद
आती है - मरणासन्न अवस्था में सारी
शारीरिक वेदनाओं को भूल कर
प्रभु-पद-रेख का स्मरण कर रहे हैं
भक्तराज गीध।

गीधराज सैं भैंट भइ बहु बिधि प्रीति बढ़ाइ।
गोदावरी निकट प्रभु रहे परन गृह छाइ।। (३-१३)

अपने भक्त की वेदना देखते ही प्रभु
भूल गये अपनी विरह-व्यथा को, उमड़
(करुणा) पड़ी करुणानिधि की नयन पंकज जल धार
रूप में; गोद उठा, माता पिता जिस तरह
सन्तान की पीड़ा मिटाने के उद्योग में लग
जाते हैं उसी व्यग्रता से प्रभु अपनी
जगत्पिता।

जटायु के शरीर से धूल झाड़ नयन-धार से घाव धोने लगे। प्रभु के स्पर्श मात्र से जटायु की वेदना मिट गई (प्रभु के श्रीमुख की छवि के दर्शन से)। फिर स्वस्थ हो सीता हरण का सारा वृत्तान्त प्रभु को कह सुनाया

आगे परा गीधपति देखा। सुमिरत राम चरन जिन्ह रेखा॥
कर सरोज सिर परसेउ कृपासिंधु रघुबीर।
निरखि राम छबि धाम मुख बिगत भई सब पीर॥
(३-३०)

प्रभु के वचन ने 'तन राखहु ताता' सुनकर मुस्करा पड़ता है भक्त और सादर निवेदन करता है कि इससे अच्छी मृत्यु दूसरी नहीं, जब स्वयं सम्मुख खड़े हैं। इतना कह देह त्याग देता है और अविरल भक्ति माँग कर प्रभु के परमधाम जाता है। इस प्रकार योगियों को भी अति दुर्लभ गति प्रभु से प्राप्त करता है। फिर प्रभु ने अपने पिता के समान उसकी अन्त्येष्टि क्रिया अपने हाथों से की। यह है प्रभु-चरणों के स्मरण की महिमा कि मांसाहारी गीध पर भी प्रभु ने इतनी कृपा की।

2008

अबिरल भगति मागि बर गीध गयउ हरिधाम।
तेहि की क्रिया जथोचित निज कर कीन्ही राम॥ (3-32)
गीध अधम खग आमिष भोगी।
गति दीन्ही जो जाचत जोगी॥ (3-33)

धन्य धन्य हैं हरि-भक्त जटायु जी।

सं० सं० १३ (2009)

२१/८५

गति

गति शब्द के अनेक अर्थ हैं। प्रस्तुत लेख में आध्यात्मिक अर्थात् पारमार्थिक पक्ष सम्बन्धित अर्थ ही लिया जा रहा है।

गति का अर्थ है — चलने की अथवा कुछ करने की क्रिया, चाल (कर्म) की तीव्रता, तेजी, पहुँच, शारीरिक या मानसिक सामर्थ्य, परब्रह्म परमेश्वर की प्राप्ति यानि मुक्ति। श्री रामचरित मानस में तुलसीदास जी ने कई विभिन्न अर्थों में गति शब्द का प्रयोग किया है: —

सखा बिरहँ मंद करि जहँ लगि गति मोरि।
गयउँ तहाँ प्रभु मुख निरखि ब्याकुल भयउँ न होइ। (६-८६)
कहि अनुसरित गति बेगि सिराऊँ।
मन क्रम बचन राम अनुरागी।। (२-२५७)
सठहु अपथ सिर हरन ही कें
किंचित कृपालहि गति सब नीकें (२-२४७)

सुनि मुनि बचन जनक अनुरागे।
लखि गति ग्यानु बिरागु बिरागे॥ (२-२९२)
बचन कर्म मन मोरि गति भजनु करहिं निःकाम।
तिन्ह के हृदय कमल महुँ करउँ सदा बिश्राम॥ (३-१६)
जल भरि नयन कहहिं रघुराई।
तात कर्म निज तें गति पाई॥ (३-३१)
गीध अधम खग आमिष भोगी।
गति दीन्ही जो जाचत जोगी॥ (३-३३)
ताहि देइ गति राम उदारा।
सबरी कें आश्रम पगु धारा॥ (३-३४)
जोगि बृंद दुरलभ गति जोई।
तो कहुँ आजु सुलभ भइ सोई॥ (३-३६)
जाति हीन अघ जन्म महि मुक्त कीन्हि असि नारि।
महामंद मन सुख चहसि ऐसे प्रभुहि बिसारि॥ (३-३६)
खल मल धाम काम रत रावन।
गति पाई जो मुनिबर पाव न॥ (६-११६)

विश्व में अप्रमेय जीव हैं सबका शारीरिक एवं मानसिक विकास एकसा नहीं अतः सबकी पहुंच आदि सामर्थ्य भी एक, सी नहीं। ~~अतः~~ जीवों में मनुष्य श्रेष्ठतम माना जाता है किन्तु मनुष्यों में शारीरिक एवं मानसिक विकास, रुचि, आस्था और मान्यताएं आदि एक सी नहीं है। ~~किन्तु~~ किन्तु परब्रह्म परमात्मा तो एकदेशीय नहीं है वह तो सर्वज्ञ, समदर्शी सबका पिता है। सारे ब्रह्माण्ड उसकी संतान है और उसके पास तो सभी एक समान है। समदर्शी होते हुए भी प्रभु सबको उनकी भावनाओं के अनुसार ही फल देते हैं (भागवत स्कंध ८ - अ २३ श्लोक ८) भजने वाले को भजते हैं (भाग. स्क. १० - अ. ४१ श्लो ४७)। जिस प्रकार कल्पवृक्ष की सेवा करने वालों को उनकी सेवा के अनुसार फल मिलता है उसी प्रकार प्रभु की सेवा के अनुरूप ही न्यूनाधिक फल मिलता है इसमें प्रभु में भेदभाव का दोष नहीं आता (भाग स्क १० - अ ७२ श ६)

२०।२

प्रभु पूरनकाम हैं उनको किसी वस्तु की अपेक्षा नहीं, वह प्रेम-परवश हैं सदा से जनके प्रेम पर बिकते आया है जिस तरह घासी मेन्ट का बना हुआ मसाला दो ईंटों को जोड़ता है उसी प्रकार प्रेम भी वह अद्वितीय मसाला है जो हरि से जीव को चिपका कर जोड़ता है। वह प्रभु के प्रति प्रेम श्रवण, कीर्तन, स्मरण, शरण आदि किसी रूप में क्यों न हो, जितना भी गाढ़ा होगा उतनी ही जल्दि प्रभु को प्राप्त कर पाएगा।

यद्यपि केवल प्रेम पियारा। जानि लेउ जो जाननिहारा (२-१३६)

सकल प्रणतारत मूल आगे रघुवर चरन सरोज है (२-२०५)

श्री हरि मंगल भवन और सबके कल्याण कर्ता हैं। उनके द्वार सब के लिये खुले हुए हैं मार्ग भी अनेक हैं चाहे कोई अपनी रुचि के अनुसार किसी मार्ग से जाये, प्रभु का हृदय चरन सबको अपनाने को हर क्षण उपलब्ध है तैयार हैं।

प्राकृत राजा की स्तुति सभी अपनी अपनी योग्यता, पहुँच, सामर्थ्यानुसार करते हैं किंतु वह राजा भी किसी प्रकार का विभेद न करके सबों की सराहना करता है सबों की स्तुति अपनाता है फिर सर्वेश विश्वनाथ प्रसन्नरूपी प्रभु सब की गति जानता है अतः सबको अपनाता है। क्या है किसी साधन द्वारा जीन जाय आवश्यकता है सिर्फ अपनी सामर्थ्य का पूर्ण अधिक से अधिक उपयोग करने की

ग्यानी गुनी ग्रामजन नागर। पंडित मूढ़ मलीन उजागर।
सुकबि कुकबि निज मति अनुहारी। नृपहि सराहत सब नर नारी।
साधु सुजान सुसील नृपाला। ईस अंस भव परम कृपाला॥
सुनि सनमानहिं सबहि सुबानी। भनिति भगति नति गति पहिचानी॥
यह प्राकृत महिपाल सुभाऊ। जान सिरोमनि कोसलराऊ॥
रीझत राम सनेह निसोतें। (१-२८)
सठ सेवक की प्रीति रुचि रखिहहिं राम कृपालु (१-२८ क)

मन को मन भी चाहे जैसा भी हो कोई फिक्र नहीं पड़ता कारण भगवान तो भाव के वश हैं और यह भाव यानि प्रेम तो हृदय की वस्तु है शरीर

२०१५

का बुद्धि से कोई लेन देन, खातीजाती नहीं इसका उदाहरण तो समुद्र पर सेतु बांधते समय गिलहरी के प्रयास का है — गिलहरी द्वारा अपनी सामर्थ्य लगाकर सतत अथक प्रयास को देखकर प्रभु अति प्रसन्न होते हैं।

आत्मवश्य भगवान सुख निधान करुना भवन (५-९२)

प्रभु ऐसे महादानी हैं कि भक्त के लिये उनके दरबार में कुछ भी अदेय नहीं है यहां तक कि स्वयं भक्त को भी दे डालते हैं — अपने भक्त के पुत्र बन जाते हैं, अपने भक्त के प्रेम वशी मुनि श्री विश्वामित्र जी के पैर दबाते हैं, नरलीला में भक्त से डरते हैं, यशोदा जी द्वारा ऊखल तक से बंध जाते हैं। प्राणधारी प्राणियों के लिए जल और वायु का अनन्त स्रोत बहा रखा है

मुनिवर सयन कीन्हि तब जाई। लगे चरन चापन दोउ भाई॥ (१-२२६)
सकुच बिहाइ मागु नृप मोही। मोरें नहीं अदेय कछु तोही॥ (१-१४९)

जब कहुँ कछु अरुदय जनि मोरें। अस बिस्वास न जहु जनि मोरें
कौतुक देखि चले गुरु पाहीं। जानि बिलंबु त्रास मन माहीं।
(१-२२५)

प्रभु अपने भक्त का मनोरथ अवश्य पूरा
करते हैं- विश्वामित्र (१-२०६), सुतीक्ष्णजी
विभीषण (५-४२) (३-१०), सबरी, मारीच आदि। किन्तु प्रभु मंगल-
भवन के पुरे जन के अमंगल का नाश करने वाले
भी साथ ही साथ हैं। जिस मनोरथ के पूरा
करने से जन का अहित होगा उस मनोरथ को
कभी पूरा नहीं होने देते जैसे नारद की विवाह
करने इच्छा पूरी नहीं होने दी (३-४४)। द्वापर में भी
मथुरा से वृन्दावन के मार्ग में जो भी मनोरथ करते
थे वृन्दावन पहुंचने पर अक्रूरजी के सारे
के सारे ज्यों के त्यों प्रभु ने पूरे कर दिये और
गोपियों के घरों में जा जा कर उनकी मनचीती
लीलाएं कर कर उन्हें सुख दिया।

२०१८

उस मंगल-भवन प्रभु की प्राप्ति ~~केवल~~ क्रिया-साध्य नहीं है केवल उसकी कृपा से ही उसकी प्राप्ति हो सकती। उसकी कृपा दो रूपों से होती है या तो भक्त के भाव-भक्ति से या दुःख से तड़फता पुकारता जब उसे पुकारता है। दुःख में मनुष्य का अहंकार टूट होकर वह प्रभु की शरण को सकता है।

भक्ति के पंथ अनेक हैं किन्तु सबका गंतव्य लक्ष्य एक ही है 'प्रभु प्राप्ति'। निष्ठा शान्ति लगन के साथ सतत पूर्वक भक्ति और कभी तो प्रभु कृपा करेंगे ही यह दृढ़ विश्वास से ही संभव है।

बिनु बिस्वास भगति नहिं तेहि बिनु द्रवहिं न रामु।
राम कृपा बिनु सपनेहुँ जीव न लह बिश्रामु॥ (७-९० क)
उमा जोग जप दान तप नाना मख ब्रत नेम।
राम कृपा नहिं करहिं तसि असि निष्केवल प्रेम॥ (६-११७ ख)

*यानि संतों का प्रसाद। 2017
** बिनु सतसंग न हरि कथा तेहि बिनु मोह न भाग।
मोह गएँ बिनु रामपद होइ न दृढ़ अनुराग॥ (७-६१)

भक्ति की प्रथम सीढ़ी है सुनना - भक्ति अपने आप प्राप्त उपलब्ध होती नहीं जहाँ प्रभु विषयक चर्चाएँ होती रहती हैं। इसमें से किसी प्रकार की योग्यता या पहुँच की आवश्यकता नहीं सिर्फ एकाग्रचित्त हो सुनना होता है मन्द से मन्द समझ वाला भी सुन तो सकता ही है। इसकी विशेषता यह है कि श्री हरिनाम या हरि-जस कान में पड़ते रहने से sub-conscious mind मस्तिष्क में अपना प्रभाव डाले बिना नहीं रहेगी अर्थात् प्रत्येक समय में संतों के मुख से कथा आदि सुनते रुचि बढ़ती जाती।

प्रथम भगति संतन्ह कर संगा।
दूसरि रति मम कथा प्रसंगा॥ (३-३५)
**

इस प्रकार यह भक्ति भावना बढ़ती जायगी। भक्ति की सर्वोत्तम सीढ़ी है गोपी-भाव अर्थात् कान्ता-भाव यानि हर घड़ी चौबीसों घंटा हर प्रकार श्री हरि का स्मरण बना रहना - इस उदाहरण ब्रज की

2018

गोपियाँ हैं जो गृहस्थी के सारे धंधे
करते हुए भी श्रीकृष्ण में ही स्मरण
करती रहतीं उनकी लीलाओं का ही
गान करती रहतीं। न तो उन्होंने कोई
शास्त्र ही पढ़े होंगे और न योग ही साधे
फिर भी प्रभु उनकी रुचि अनुसार
नाचते रहते थे।

श्री मद्भागवत के दशवें स्कन्ध
अध्याय अस्सी श्लोक ३ और ४ में लिखा है
कि प्रभु का गुणगान (नाम और लीला) करने
वाली वाणी, प्रभु के लिये कर्म करने हाथ,
प्रभु का स्मरण करने वाला मन, प्रभु की कथा,
सुनने वाले कान, प्रभु की चल एवं
अचल मूर्तियों को प्रणाम करने वाला
शिर, प्रभु विग्रह के दर्शन करने वाले
नेत्र एवं श्री हरि एवं हरि भक्तों के
चरणोदक सेवन करने वाले अंग ही
सफल हैं।

उपरोक्त वर्णित सभी शर्तों की सफलता को प्राप्त करने के प्रयास में तो किसी प्रकार की योग्यता की आवश्यकता तो पड़ती ही नहीं है केवल मनुष्य के अंदर से ऐसी इच्छा ही होनी चाहिये। निरक्षर और अत्यन्त मूढ भी चाहे तो कर सकता है।

कलिदोषों से दूषित हम लोगों के लिये तो ~~[illegible]~~ भगवन्नाम और उनकी लीला के बिना तो गति की कोई उपाय है ही नहीं।

हरेर्नाम हरेर्नाम हरेर्नामैव केवलम्।
कलौ नास्त्येव नास्त्येव नास्त्येव गतिरन्यथा॥
(बृहद् नारदीय पुराण ३८/१२६)

श्रीराम जय राम जय जय राम।
ॐ नमो भगवते वासुदेवाय॥

२०२७

(३९१)

6/8/85

पदाश्रय

तर गया भव-सिंधु जो पाया।
राघव तारक पद-छत्र-छाया।।

त्रिभुवन पावन करै सुर सरी।
श्री हरि पद-पदुमन से निसरी।।

तरि गौतम-ती कुल-प्रद भूरी।
जब सीस परी प्रभु पद धूरी।।

परिवार पितर सह केवट तरा।
जब जाह्नवी तट पद पखारा।।

जनक सुनयना पाय पखारा।
ग्रौं जानकी कन्या दान किया।।

सुग्रीव विभीसन राज पाया।
जब अग्रज भय [illegible] सहन कर पाया।।
त्रास

पर पादुका भरत सुख पाया।
'संकर' मिलाहिं सो पदाश्रय का।।

२०२२

(सं० १९५)

१२/३/७४ मंगल भवन अमंगलहारी

(१-१०) १-११२

श्रीरामजी के नाम, रूप, लीला और धाम चारों ही दिव्य सच्चिदानंद विग्रह हैं "रामस्य नाम रूपञ्च लीला धाम परात्परम्। एतच्चतुष्टयं नित्यं सच्चिदानन्द विग्रहम्" (वशिष्ठ संहिता) (मानस पीयूष खण्ड १ पृष्ठ १९८)

नाम:- मंगल भवन अमंगलहारी।
उमा सहित जेहि जपत पुरारी (१-१०)

रूप:- मंगल भवन अमंगलहारी।
द्रवउ सो दसरथ अजिर बिहारी॥ (१-११२)

लीला:- रामकथा जग मंगलकरनी (१-१०)
मंगलकरनि कलिमल हरनि तुलसी कथा रघुनाथ की (१-१०)

धाम:- सकल सिद्धि प्रद मंगल खानी।
राम धाम दा पुरी सुहावनी॥ (७-४)
पुनि देखु अवधपुरी अति पावनी।
त्रिविध ताप भव रोग नसावनी॥ (६-१२०)

२०२३

<u>नाम</u> - नामु राम को कलपतरु कलि कल्यान निवासु (१-२६)
भायँ कुभायँ अनख आलसहूँ।
नाम जपत मंगल दिसि दसहूँ ।। (१-२८)
राम-नाम का जप <u>प्रमुख</u> है

<u>रूप</u> - प्रभु के सम्पर्क में आने वाला भी मंगल दायक और मंगल मय हो जाता है
" जब ते आइ रहे रघुनायकु।
तब ते भयउ बनु मंगल दायकु ।। (२-१३७)
" परसि चरन रज अचर सुखारी।
भए परम पद के अधिकारी ।। (२-१३९)
अचर भी परम पद के अधिकारी हो गये
गौतम नारी (अहल्या) भी तो पद स्पर्श से पावन हो गयी ।
महर्षि वाल्मीकि प्रभु की मंगल मूरति देख कर अति आनन्द प्राप्त करते हैं
" बाल्मीकि मन आनँदु भारी।
मंगल मूरति नयन निहारी (२-१२५)

२०२५

लीला: बरषहिं राम सुजस बर बारी।
मधुर मनोहर मंगलकारी॥ (१-३६)

अच्छे कर्मों के पुण्य-फल से प्राप्त होता है स्वर्ग, सुख प्राप्त होता है किन्तु काल पाकर पुण्य क्षीण हो जाते हैं तब वह सुख नष्ट हो जाता है यहाँ तक कि पुण्य क्षीण होने से जीव स्वर्गलोक से नीचे गिर जाता है किन्तु प्रभु के नाम, रूप लीला और धाम नित्य सच्चिदानन्द विग्रह है अतः इनका फल कभी क्षीण होता ही नहीं।

यह सृष्टि अच्छे और बुरे दोनों विरोधी तत्वों से भरी है अतः जब बुरे तत्वों की वृद्धि होती, समाज जब पीड़ित होने लगता है दुःखों से पर-पीड़कों का नाश करने के लिए नर-देह में प्रभु अवतार

लेकर उनपर-पीड़कों का नाश करते हैं। किन्तु चूंकि प्रभु मंगलभवन हैं अतः ऐसे दुष्टों को मार कर उन्हें मुक्त करके उनका भी कल्याण ही कर देते हैं।

"जब जब होइ धरम कै हानी। बाढ़हिं असुर अधम अभिमानी
तब तब प्रभु धरि बिबिध सरीरा। हरहिं कृपानिधि सज्जन पीरा
(१-१२४)
"निर्बान दायक क्रोध जा कर भगति अबसहि बसकरी
(३-२०६)
"मोर दरसु अमोघ जग माहीं" (५-४९)

धन्य हो प्रभु

२०२८

ॐ नमः ९५

15/8/84

सतत स्मरण

भगवान श्री हरि सर्वेश्वर, जगदीश्वर पूर्णकाम हैं उन्हें किसी वस्तु की अपेक्षा नहीं। साधु ही भाव प्रभु जन-रंजन प्रेम पर वश सदा होते हैं। प्रभु तो सिर्फ प्रेम के प्यासे हैं उन्हें प्रेम ही प्यारा है

रामहि केवल प्रेम पियारा। जानि लेउ जो जाननिहारा।
सुर कृपालु नहिं करहिं सहि जाहिं बिबके बल प्रेम। (२-१३६)

कोई ऐसी महान से महान वस्तु है ही नहीं जिसे प्रभु अपने भक्त को न दे डालें - जहां तक कि स्वयं तक को भी दे डालने में नहीं हिचकते - स्वयं गी अर्जुन के सारथी तक बन जाते, और गोपियों के घर जाकर उनकी इंगित पर नाचे। भक्त चाहे कितना ही सठ हो, किसी वर्ण का हो, स्त्री या पुरुष कोई भी हो कामना प्रभु उसकी इच्छा पूरी करते ही हैं।

कहहु रघुपति सिसु नत्याउ किन जाना। कहहु स्व भगति कर जाना। (३-३५)

श्री हरि के नाम (लिखना, कीर्तन, किसी भी प्रकार से जप); चरित्र अर्थात लीला गुण (सुनना, सुनाना, पढ़ना, गाना); दर्शन पूजा आदि; भगवत-चर्चा; ध्यान; उनके प्रति किये जाते उपकारों के लिये सदा कृतज्ञता-ज्ञापन; स्मरण, चिंतन आदि सभी तो भक्ति के विभिन्न साधन और अंग हैं। इससे किसी भी श्री हरि से सम्बन्धित कार्यों से प्रभु का स्मरण ही तो होता है। एक से मन उचट जाने पर या वातावरण बदल जाने या परिस्थिति वश न कर सकने पर दूसरा चालू कर देने पर प्रभु से सम्पर्क तो बना ही रह जाता है। जिस वस्तु का निरंतर चिन्तन होगा उसमें आसक्ति तो बढ़ेगी ही और शनैः शनैः तन्मयता/तद्रूपता भी होती ही।

मम गुन ग्राम नाम रत गत ममता मद मोह।
ताकर सुख सोइ जानइ परानंद संदोह।। (७-४६)

२०२४

किन्तु होता है जब प्रभु की कृपा होती
है ऐसी उसकी मर्जी होती है जब संचित कर्म
फलवश जीव का कल्याण का समय
प्रस्तुत है। राम कृपा बिनु अपाइ न जाईं (७-८५)
एक बार जब प्रभु ऐसी कृपा करते हैं फिर
उसमें निष्ठा और विश्वास के साथ
लगे रहना जीव का काम है प्रयत्न जीव
का धर्म है। राम भजें गति केहिं नहिं
पाई।। (७-१३०)। भगति हीन गुन सब सुख
ऐसे। लवन बिना बहु बिंजन जैसे।। अबिरल
भगति बिसुद्ध तव श्रुति पुरान जो गाव।
जेहि खोजत जोगीस मुनि प्रभु प्रसाद
कोउ पाव।। (७-८४) बिना प्रभु कृपा के
पुरुषार्थ से यह सम्भव नहीं है।
परमात्मतत्व उद्योग-साध्य नहीं है क्योंकि
वह क्रियाजन्य फल नहीं है। जो क्रियाजन्य
फल होता है वह नाशवान् होता है। परमात्मा
तो केवल लालसा मात्र से मिल जायगा। जब
तक संसार-सम्बन्धी कुछ भी लालसा

हृदय में रहेगी भगवान् व प्रभु की लालसा
अवलम्ब कहाँ हुई? अतः अनन्य लालसा
के बिना प्रभु की कृपा नहीं मिलती।
सांसारिक लालसाएं मिटती रहती हैं
फिर नयी नयी उठती रहती हैं। कामनाएं
मिटा दो तो भगवत्प्राप्ति तत्काल हो जायगी

एक बानि करुणानिधान की। सो प्रिय जाके गति न आन की।।
निकट ते पुनि मोहि प्रिय यहि दास। मैं हूँ डरि मोरि सद्बुद्धि आस

त्रिगुणमय इस सृष्टि में शुभ और
अशुभ प्रवृत्तियों का प्रवाह तो सदा चलता
ही रहता है। संसार में तीन प्रकार के मनुष्य
हैं (१) भक्त (२) संसारी (३) उदासीन जिन्हें
इन बातों में कुछ भी रुचि नहीं रहती।
तीसरे प्रकार के उदासीन मनुष्य यह
भूले रहते हैं कि मनुष्य मरण-धर्मा है जन्मते ही
उसकी मौत निर्धारित हो जाती है, संसार
उसके साथ रह ही नहीं सकता, वृक्ष, जीव भी
ताकत नहीं कि उसके सहारे रह जायें या वह
संसार के साथ रह जाय।

२०३०

"दो बातनको ~~[illegible]~~ भूल मत जो चाहत कल्यान
नारायण एक मौतको दूजे श्री भगवान (कल्याण वर्ष [illegible]
(अर्जुन [illegible] पृष्ठ 574)

उपरोक्त दूसरी श्रेणी प्राप्ति बहुत भारी बनना भी हमारी पहुंच के बाहर है कारण हमारी कलियुग के जीव में इतनी सामर्थ्य कहाँ कि हम सतयुग, त्रेता और द्वापर के मनुष्यों के समान इतने तीव्र हो सकें कि हमारा उद्धार करने प्रभु धरा-धाम पर अवतरित हों।

अतः हम तो प्रथम श्रेणी के बन सकते हैं यदि हमारे अंदर ऐसी लालसा - हाँ
अनन्य सही अर्थ में लालसा उत्पन्न हो जाय कि प्रभु की कृपा प्राप्त हो और हमारा कल्याण हो। प्रभु तो इसकी कृपा लो बिखेर रहे हैं। मत [illegible] हे साधक यह सोच कर कि इतनी उम्र तो बीत गयी अब क्या होना है - बीती को भूल कर आगे की सुध लें - जो गई सो तो

स्वामी – प्रभु की शरण हो जाने में है – इतने में भी
कल्याण हो जायगा – यदि कोई पापी महा
वाला भी हो तो भी उसका कल्याण हो जायेगा।
उपाय यही है विश्वास करके प्रभु का नाम-
रूप पकड़ रखो – जब तक कि श्वास है नहीं लग
जाय तब तक पकड़े रखो। नौका तो दृढ़ है
केवट भी पूर्ण सामर्थ्यवान और होशियार
है। नौका ही हरि का नाम है, केवट प्रभु
स्वयं हैं। निश्चिन्त बैठकर उसका जप और
स्मरण करो, भवसागर से बेड़ा पार है।
विश्वास करके प्रभु की शरण चले ही आओ
वृहत् और एक लम्बा संसार ही बड़ा है। इसमें
कुछ भी कोई कोई व्यापार मत जानो। गुरु
को दूर से, पार कर चले जायेंगे।
यह करना तो निज में ही पड़ेगा दूसरा कोई
भी कर नहीं सकेगा।

२०३२

प्रेम का स्थान है हृदय - जितना गाढ़ा प्रेम होगा उतनी ही अपने प्यारे की याद आयगी कोई अपने प्यारे को क्षण भर भी नहीं भूलता यही बात प्रभु के बारे में भी लागू पड़ती है। प्रभु स्मरण ध्यान तो हम चाहे जिस समय में आरम्भ कर सकते हैं। इसके घर या संसार छोड़ना आवश्यक नहीं है पर हां आवश्यकता है मन में इच्छा और लगन होने की।

प्रेमी भक्त और बैर-भावी शत्रु दोनों की गति भिन्न भिन्न है। बैरी भाव आश्रय से तो सिर्फ निर्वाण ही मिल जाता है पर भक्ति से तो वह मुक्ति तो अपने आप मिल जाती है साथ ही साथ प्रभु से हमारा सम्पर्क हमेशा बना रहता है और प्रभु भक्तों के वश में रहते हैं भक्त के हृदय में रहते हैं - प्रेम-पर-वशता तो प्रभु का सदा से स्वभाव ही रहा है। भक्त की अमंगल की स्थिति तो कभी आती ही नहीं आती भी है तो ठहरती नहीं

और उस प्रभु मिलन का ध्यान भी मन को मंगल-दायक ही होता है। हमारे धर्म शास्त्रों में ऐसे उदाहरण भरे पड़े हैं।

निर्वाण दायक क्रोध जाकर भगति अवसहि वसकरी। (३-२६)
राम भजत सोइ मुकुति गोसाईं। अनइच्छित आवइ बरिआईं॥ (७-११९)

- हमारे वेद पुराणों का भी मत यही है कि श्री हरि की भक्ति के बिना सच्चा सुख नहीं मिल सकता। यदि संसार में दुःखों पर विजय चाहते हो तो जीवन रूपी रथ के घोड़ों की लगाम प्रभु के नाम, रूप के हाथ सौंप कर निश्चिन्त हो जाओ। श्री हरि करोड़ों कामधेनुओं के समान सारी कामना पूरी करने वाले हैं।

श्रुति पुरान सब ग्रंथ कहाहीं। रघुपति भगति बिना सुख नाहीं॥ (७-१२२)
श्रुति सिद्धांत इहइ उरगारी। राम भजिअ सब काज बिसारी॥ (७-१२३)
कामधेनु सत कोटि समाना। सकल काम दायक भगवाना॥ (७-९२)
ईस भजनु सारथी सुजाना। (६-८०)
नौमि निरंतर श्री रघुवीरं (३-११)

२०३५

सं. सं. क्र. ७६

19-8
८५
जन्माष्टमी

ग्यारहवी विष्णु भगवान की

जय जगदीश हरे.
भक्त जनों का संकट छिन में दूर करे
जो ध्यावे फल पावे दुख बिनसे मन का। जय

सुख संपत्ति गृह आवे, कष्ट मिटे तन का
मात पिता तुम मेरे, शरण गहूं किसकी,
तुम बिन और न दूजा, आशा करूँ जिसकी॥ जय

तुम पूरन परमात्मा, तुम अन्तरयामी
पारब्रह्म परमेश्वर, तुम सब के स्वामी
तुम करुणा के सागर, तुम पालनकर्ता
मैं मूरख, खल, कामी कृपा करो भर्ता॥ जय

2035

तुम हो एक अगोचर सबके प्राण-पति
किस विधि मिलूँ गुसाईं तुमको मैं कुमति
दीनबन्धु दुख-हरता, ठाकुर तुम मेरे
अपने हाथ उठाओ, द्वार पड़ा तेरे
विषय-विकार मिटाओ, पाप हरो देवा
श्रद्धा-भक्ति बढ़ाओ, सन्तन की सेवा॥ जय०

2036

सं० सं० ९७

20/4/84

महापातक

(कल्याण 58/5/579 से उद्धृत)

एक समय व्यासजी से ब्राह्मणों ने पूछा ऐसा पातक कौन सा है जिसे सभी लोग कर सकें और जिससे मनुष्य देवताओं का भी पूज्य बन सकता हो?

उत्तर में भगवान व्यासजी ने कहा 'पांच महापातक हैं':—

(१) माता-पिता की सेवा
(२) पति-सेवा
(३) सर्व भूतों में समदृष्टि
(४) मित्र-द्रोह न करना
(५) भगवान विष्णु की भक्ति

2037

संवत् ६९४

सत्संग की महिमा

(कल्याण पृ० ४/५ ५७३ से उद्धृत)

वसिष्ठ सत्संग को और विश्वामित्र तप को बड़ा बताते थे। निर्णय करने ब्रह्मा के पास पहुँचे - उन्होंने शेष जी के पास जाने का सम्मान दिया - शेष जी ने कहा "आप में से कोई अपने प्रभाव से इस पृथ्वी को कुछ क्षण आधार में रोके रहें तो मेरा भार कम हो और मैं स्वस्थ हो कर विचार करके निर्णय दूँ।" प्रथम विश्वामित्र जी ने एक हजार वर्षों के तप को फल अर्पित करने का संकल्प कर जल छोड़ा किंतु पृथ्वी हिली भी नहीं। वसिष्ठ जी ने कहा मैं आधी घड़ी के अपने सत्संग का पुण्य देता हूँ पृथ्वी देवी कुछ क्षण गगन में अवस्थित रहें। वसिष्ठ के संकल्प करते ही पृथ्वी शेष जी के फण से ऊपर उठ कर निराधार स्थिर हो गयी। विश्वामित्र ने वसिष्ठ के चरण पकड़ लिये।

2038

३१२

२५/५/७४

केवल राम

राम राम राम, केवल राम।। टेक

बसें घट घट राम, दस दिसि राम।
पवन सौरभ राम, हर जगह राम।।

जप मन में राम, तन से राम।
रमा रसना राम, करन्ह राम।।

धर सिस पद राम, हँसि सिस कर राम।
गा जस राम, सुन केवल राम।।

बसा दृगन राम, निरख छवि राम।
हर घटना देख, कर केवल राम।।

२०३९

हर निमिष राम, रह स्मरन राम।
सुमर राम, चित्त भ्रमर पद राम।।

हर कदम राम, बसा हिय राम।
रमैं मैं हाड़न रोम रोम राम।।

ठाकुर ॐकार, सीता राम।
सन्त कहैं, रट सतत केवल राम।।

पावै विश्राम, रटै केवल राम।
अन्त उपावैं राम, रट 'संकर' राम।।

2040

रि.ल.सं ११

27-8-84

तू दयालु, दीन हौं, तू दानि, हौं भिखारी।
हौं प्रसिद्ध पातकी, तू पाप-पुंज-हारी॥१

नाथ तू अनाथको, अनाथ कौन मोसो?
मो समान आरत नहिं, आरति-हर तोसो॥२

ब्रह्म तू, हौं जीव, तू ठाकुर, हौं चेरो।
तात, मात, गुरु, सखा तू, सब बिधि हितु मेरो॥३

तोहिं मोहिं नाते अनेक, मानियै जो भावै।
ज्यों त्यों तुलसी (शंकर) कृपालु चरन-सरन पावै॥

२०५१

सं.ले.सं. ७०

10-9-84

भजन

भजन शब्द बड़ा ही व्यापक अर्थ वाला है। अपने इष्ट परमात्मा के नाम का जप-कीर्तन करना, उनके स्वरूप का चिन्तन ध्यान करना, भगवान की कथा सुनना, भगवत् सम्बन्धी ग्रन्थों (गीता, रामायण, भागवत आदि) का पठन पाठन करना, प्रभु का स्मरण करना, ऐसे गीत गाना आदि गाना जिसमें प्रभु के गुणों एवं लीला आदि का वर्णन हो ऐसा और भी कोई कार्य करना जो कि भगवान से सम्बन्धित हों, प्रभु का यशोगान आदि आदि सभी उस प्रभु का भजन ही तो है। परन्तु असली भजन तो वह है जिसमें हृदय भगवान की तरफ ही खिंच जाता है, केवल भगवान ही प्यारे लगते है,

२०५२

भगवान की विस्मृति चुभती है बुरी लगती है। इस प्रकार भगवान् में तल्लीन होना असली भजन है।

किसी भी सम्प्रदाय, धर्म, पन्थ, समाज स्त्री, पुरुष, बाल, वृद्ध, किसी भी भाषा को बोलने वाला, किसी देश का वासी क्यों न हो, अपने इष्ट का भजन अपनी रुचि के अनुसार अपनी मातृ भाषा में करने का समान अधिकार सबको है और सब भजन को प्रभु स्वीकार करते हैं कारण प्रभु सर्वज्ञ हैं - सारे मतों, धर्मों एवं पन्थों का मार्ग अलग अलग होते हुए भी लक्ष्य सबका एक ही है।

साधक को सबसे पहले यह उद्देश्य बनाना आवश्यक है कि हमें तो अपने इष्ट को ही प्राप्त करना है और भावना यह रहनी चाहिये कि इस संसार में

विलक्षणता

जो भी विशेषता दीखती है वह सभी मेरे प्रभु की ही विभूति है। जब तक अपने इष्ट को सर्वोपरि नहीं समझेगा तब तक उसकी तरफ पूरा खींचाव नहीं होगा, अपनापन नहीं होगा। ऐसी भावना होने से चित्त स्वतः ही प्रभु में लगने लगेगा। मैं भगवान का हूँ इस निश्चय दृढ़ भावना से जब स्वयं भगवान में लग जाता है वहाँ चित्त, बुद्धि आदि स्वतः भगवान में लग जाते हैं कारण फिर चित्त, बुद्धि से कर्ता की अपनत्व नहीं रह सकती। सच्चे हृदय से सम्बन्ध बन जाने पर उसका मन अन्यत्र कहीं नहीं लगता और जिस कार्य में वह लगता है वह कार्य भगवान का ही होता है। मैं केवल भगवान का हूँ और "केवल भगवान ही मेरे हैं"। मेरे पर प्रभु का पूरा अधिकार है इसलिये वे मेरे प्रति चाहे जैसा बर्ताव या विधान कर सकते हैं, मैं जैसा चाहूँ प्रभु वैसा

२०५५

वैसा ही करें यह अधिकार नहीं मानना चाहिये - तब साधक का चित्त भगवान में लग जायगा

साधक का जीना और उसकी सारी क्रियाएं (भगवत् सम्बन्धी, शारीरिक जीविका-सम्बन्धी, सामाजिक आदि) भगवान के लिये ही हों।

भगवत् भाववाले, भगवत् रुचिवालों से मिलने पर भगवान सम्बन्धी चर्चा छिड़ जाने से नये नये भाव प्रकट होते रहते हैं। किन्तु अकेले में उतने भाव प्रकट नहीं होते। उनका आदान प्रदान नहीं होता। परन्तु इस आदान प्रदान में वक्ता बनने का अभिमान और श्रोता बनने की लज्जा नहीं होवे।

साधक की भारती, कान और प्रफुल्लकरके भगवान की लीलाओं को जानने, सुनने और चिन्तन करने के लिये ही है। हरदम भगवान में ही लगा रहे। सिद्धि आदि को तुच्छ समझे इन की कोई कीमत न करे और भगवान की प्रीति में इतना मस्त रहे कि स्वप्न में भी भगवत्प्राप्ति के सिवाय कोई भी इच्छा जाग्रत ही नहीं हो। इस प्रकार निष्काम और प्रेम पूर्वक भजन करने को देख कर भगवान का हृदय द्रवित हो जाता है और प्रभु उस भक्त में किसी प्रकार की कमी नहीं रहने देते।

साधक संसार की हर घटना में प्रभु की लीला ही देखे और कण कण में प्रभु को ही परिव्याप्त समझे। उत्पत्ति प्रलय, अनुकूलता, प्रतिकूलता, अमृत, मृत्यु, स्वर्ग नरक सब भगवान की ही लीला हैं। मैं

२०४६

लीला करने प्रभु के ही रूप हैं - यही भगवत दृष्टि हरदम रहनी चाहिये। उत्पत्ति, नाश, यश, अपयश ये चारों तो पूर्वकृत कर्मों के फल हैं

श्रवण-भक्ति - भक्ति के साधनों में श्रवण का नाम सबसे पहले आता है कारण कान के द्वारा शब्द सुनकर हमें प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष दोनों का ज्ञान होता है। शास्त्रों में वर्णित परमात्मतत्व का ज्ञान कान से ही सुनकर होता है और उसके अनुसार करने, मानने या जानने से हम उस परमात्मतत्व का साक्षात्कार कर सकते हैं जबकि आंखें तो सिर्फ आने पर ही तो उसे देख सकती हैं

(परोक्ष)

स्तुति - स्तुति में भगवान की महिमा, गुण, प्रभाव आदि का कथन (गान) होता है इसमें आर्त्तिक भाव ज्यादा होता है

पुज्य भाव ज्यादा होता है।

प्रार्थना – इसमें भगवान गुणों आदि को तत्व से जानने की और प्रभु से कुछ पाने की होती है। आसक्तिक भाव के साथ साथ अपनी इच्छा भी रहती है। पुज्य भाव के विश्वास और अपनी इच्छा भी रहती है।

प्रश्न – अपने हृदय में हलचल, संदेह जिज्ञासा आदि को दूर करने के लिये प्रश्न होते हैं। जिज्ञासा की पूर्ति, विषय का समाधान के लिये है। जितने अंश में विशेषता रहती है उतनी स्तुति, और जितने अंश में समाधान चाहता है उतना अंश प्रश्न का होता है। इसी प्रकार जितने अंश में प्रेम से मांग की जाती है उतना अंश प्रार्थना का होता। भाव भजन में एक, दो या तीनों ही भाव एक साथ ही रह सकते हैं।

माधुर्य — जहाँ भक्त का भगवान के घनिष्ठ अपनापन है वहाँ भगवान के दीखते हुए भी स्तुति, प्रार्थना और प्रश्न नहीं होते। भगवान का आनन्द ही भक्त का आनन्द होता है। इसे ही माधुर्यभाव कहा जाता है।

चिन्तन — किसी विशेषता, महत्ता सुन्दरता की ओर जहाँ से स्वतः हमारे मन का खिंचाव होता है वहीं वहीं उस विशेषता आदि को भगवान की ही समझना श्री हरि की विशेषता देखना, विभूति देखना, चिन्तन और योग है किन्तु उसे संसार की विशेषता देखना मोह है। इससे हमारी वृत्तियों का प्रवाह संसार में न होकर भगवान में हो जायगा, भक्ति दृढ़ हो जायगी और हमारा कल्याण हो जायगा। यह दिव्यता है। इसका उदाहरण श्री रामचरितमानस में लंका कांड में चन्द्रमा के बीच श्यामता का

कारण पवनसुत द्वारा बखानि मैं मिलता है

कह हनुमंत सुनहु प्रभु ससि तुम्हार प्रिय दास।
तव मूरति बिधु उर बसति सोइ स्यामता अभास (६४२)

साधक को अपना पुरुषार्थ, अहंकार सामर्थ्य बुद्धि न रखकर केवल भगवान पर ही निर्भर हो जाना चाहिये क्योंकि भगवत् प्राप्ति क्रिया-साध्य नहीं है सिर्फ भगवत्कृपा-साध्य है और भगवत्कृपा से जो चीज मिलती है वह अपार मिलती है। असीम और अनन्त होती है

जप-यज्ञ – भगवन्नाम के जप को जप-यज्ञ कहा जाता है चाहे कोई सा भी नाम हो। इसमें किसी प्रकार की विधि की आवश्यकता नहीं है। इससे सब प्रकार के दोष नष्ट हो जाते हैं।

2050

भजन को प्रकट कर अपने को
भजनानन्दी होने का प्रचार मत करो।
प्रचार होने से तुम्हारे अंदर ~~अभिमान~~
अभिमान उदय होगा - यह अभिमान
सम्पूर्ण आसुरी - सम्पत्ति का जनक है

सब वस्तु, व्यक्ति, घटना
परिस्थिति आदि के मूल में भगवान
को देखने लगने से हर समय आनंद
ही - आनन्द रहेगा।

भगवान की ओर बढ़ते रहना और
चलते रहने का निश्चय बहुत ही दृढ़ रहे
पर उस निश्चय को अपना गुण नहीं
मानकर भगवान की कृपा ही मानो
और भगवान को ही याद करो। अपने शिष्य
की शंका समाधान करते हुए गुरु ने कहा अपने इष्ट के लिये
जो करना चाहे अधिक से अधिक करता रहे और इष्ट
को ही समर्पित करता रहे।

जब हमारा उद्देश्य केवल भगवान को प्राप्त करने का ही होगा और चिन्तन एवं मनन केवल भगवान को ही होगा तब प्रभु की कृपा अवश्य होगी और उनकी दिव्य सामी प्रकट होगी। भक्ति दृढ़ रहेगी

भगवान की प्राप्ति केवल भगवत्कृपा से ही होगी - यह कृपा तब प्राप्त होती है जब मनुष्य अपनी सामर्थ्य, समय, सामग्री, बुद्धि आदि को भगवान् को सर्वथा समर्पित करके अपने में सर्वथा निर्बलता, अयोग्यता का अनुभव करता है अपने में किञ्चित मात्र भी अभिमान नहीं रहेगा।

साधक भगवान का ही चिन्तन करे और सबको परमात्मस्वरूप ही देखे यही दोनों भजन के मूल सूत्र हैं।

श्री रघुपतिम् शरणम् प्रपद्ये। श्री हरि शरणम्; हरि हरणम्; हरि चरणम्

२०५२

छं.लं.सं. 101

२४/१/८४

अनन्यता

यह तो सर्वविदित है कि सती-स्त्री अपने पति (चाहे वह कितना मामूली मनुष्य रहा हो) को ही अपना एकमात्र इष्ट-देव मान कर अति विलक्षण शक्ति प्राप्त कर लेती है। फिर कोई कारण नहीं साधक अपने इष्ट भगवान के प्रति अनन्य भाव से भक्ति करके सब कुछ प्राप्त नहीं कर ले। यहां तक कि स्वयं प्रभु को भी अनन्य भक्त प्राप्त कर लेता है।

स्वामी रामसुखदासजी की गीता की विभूति और विश्वरूप दर्शन :-

अर्थ :- अनन्य भक्ति का अर्थ है - केवल
(पृ २०५) भगवान का ही आश्रय हो, सहारा हो, आधार हो, विश्वास हो। भगवान के सिवाय किसी योग्यता, बल, बुद्धि आदि का किंचित मात्र भी सहारा न हो, महत्व न माने। यहाँ तक कि अपने भजन-स्मरण करने का, साधन करने का,

उत्कंठापूर्वक पुकारने तक का भी सहारा न मानें। कारण भगवान की प्राप्ति किसी भी साधन से नहीं होती बल्कि सारे साधनों के अभिमान को गला देकर उसकी महती कृपा पर ही आश्रित रहने से ही भगवत्प्राप्ति होती। अतः साधन तो अपने साधन करने के अभिमान को मिटा देने के लिये हो

"एक भरोसो एक बल एक आस बिस्वास।
एक राम घन स्याम हित चातक तुलसीदास।।
(दोहावली २७७)

"एक बानि करुनानिधान की। सो प्रिय जाकें गति न आन की।।
(३-९)

यह अनन्य भक्ति स्वयं से ही होती है मन-बुद्धि आदि इन्द्रियों के द्वारा नहीं होती। स्वयं की व्याकुलतापूर्वक उत्कंठा हो, उसके दर्शन के बिना एक क्षण भी चैन न पड़े — इससे अनन्त जन्मों के अनन्त पाप भस्म हो जाते हैं।

नित्य लालसा रखनेका तात्पर्य है नित्य निरन्तर परमात्मा की ही लालसा लगी रहे और दूसरी कोई लालसा रहे ही नहीं – भगवत्प्राप्ति की लालसा प्रधान हो, भोग आदि की रुचि बिल्कुल ही नहीं रहे। इस प्रकार सर्वथा भगवान की शरण होने पर भक्त अन्य सारी इच्छायें समाप्त हो जाती हैं किन्तु।

(पृ २५१) तथापि भगवान की यह एक महती विलक्षणता है कि भगवान की लीला में प्रवेश करने की भक्त की जो इच्छा रही होती है उसको भगवान पूरी कर देते हैं केवल पारमार्थिक इच्छा को ही पूरी करते हों ऐसी बात नहीं है; किन्तु पहले की भक्त की सांसारिक इच्छा रही होती है उसको भी भगवान पूरी कर देते हैं। जैसे भगवद् दर्शन से पूर्व की इच्छा के अनुसार

ध्रुवजी को छत्तीस हजार वर्ष का राज्य मिला और विभीषण को एक कल्प का। इसके अलावा भक्त को वास्तविक पुरस्कार की प्राप्ति करा देते हैं जिससे भक्त के लिये कुछ भी करना जानना और पाना शेष नहीं रहता।

(मानस ६-११६ घ)

अनन्य भक्त विष्णु, राम, कृष्ण आदि जिस सगुण में देखना चाहे देख सकता है, किन्तु ध्यान के द्वारा भगवान तत्व से जाने जा सकते हैं और प्राप्त किये जा सकते हैं, पर दर्शन देने के लिये बाध्य नहीं हैं। भगवान के दर्शन तो केवल भगवान की कृपा से ही हो सकते हैं किसी प्रकार की योग्यता से नहीं। कितनी ही महान क्रिया, योग्यता क्यों न की जाय किंतु भगवान खरीदे नहीं जा सकते। भगवान बिकते तो अनन्य भक्त के हाथ ही हैं।

2056

(Pg 246) ऐसे ही अनन्य चित्त वाले भक्त के लिये भगवान ने कहा है "जो अनन्य चित्त वाला भक्त नित्य निरन्तर मेरा चिन्तन करता है उसके लिये मैं सुलभ हूं (गीता ८।१४) और "जो अनन्य भक्त मेरा चिन्तन करता हुआ उपासना करता है उसका योगक्षेम मैं वहन करता हूं। (गीता ९।२२)

भक्त की हृदय की उत्कट अभिलाषा में इतनी शक्ति है कि वह भगवान में भी भक्त से मिलने की उत्कंठा पैदा कर देती है फिर भगवान की इस उत्कंठा में बाधा देने की किसी में सामर्थ्य नहीं। प्रभु की यह उमड़ी हुई कृपा भक्त के सारे विघ्नों को दूर करके भक्त की योग्यता अयोग्यता की ओर ध्यान देकर भगवान परवश हो भक्त के सामने तत्काल प्रकट हो जाते हैं।

"निर्बान दायक क्रोध जाकर भगति अबसहि बसकरी।"
(३-२६)

अनन्य भक्ति के साधन — "साधन पञ्चक"

(गि २५५) (१) सब प्रकार के पारलौकिक और सांसारिक (लौकिक) को केवल भगवान की प्रसन्नता के लिये ही करना — "मत्कर्मकृत्" — भगवान की

(२) प्रसन्नता के लिये, भगवान की आज्ञा के अनुसार, निमित्त मात्र बनकर करना।

(२) भगवान को परम श्रेष्ठ परम उत्कृष्ट समझ कर केवल भगवान के ही परायण रहना — परम प्राप्तव्य, परम ध्येय, परम आश्रय केवल भगवान को ही मानना — मत्परमः

(३) मैं केवल भगवान का हूँ और केवल भगवान ही मेरे हैं; तथा मैं अन्य किसी का भी नहीं हूँ और अन्य कोई भी मेरा नहीं है — मद्भक्तः —

उपरोक्त तीनों भाव भगवान के साथ

2058

चलि रहता रहे हैं। और नीचे लिखे दोनों भाव संसार के साथ सम्बन्ध विच्छेद के हैं।

(४) संसार में आसक्ति ममता और कामना बिलकुल नहीं रहती। - संगवर्जितः

(५) सदैव सर्वत्र समता भाव रहता है अतः उसके शरीर के साथ कोई कितना ही दुर्व्यवहार करे, उसको मारे-पीटे, उसका अनिष्ट करे, किन्तु ऐसा करने वालों के लिये भी किसी प्रकार किंचित मात्र भी वैर भाव उत्पन्न ही नहीं होता। - निर्वैरः सर्वभूतेषु —

ऐसे अनन्य भक्त प्रभु को तत्व से जानना, दर्शन करना और प्राप्त करना ये तीनों बातें आ जाती हैं।

प्रह्लाद जी सर्वत्र और सब वस्तुएँ में सदा ही भगवान को ही देखते थे अतः वे अभय थे और निडर होकर नरसिंह भगवान के चरणों में गिर गये

रामचरित मानस में —

(१) प्रभु अनन्य भक्त की मानसिक भावना पवन सुत से कहते हैं —

"सो अनन्य जाकें असि मति न टरइ हनुमंत।
मैं सेवक, सचराचर रूप स्वामि भगवंत॥ (४-३)

अर्थात् विश्व के सारे पदार्थ चर अचर जो भी है सब भगवान के ही विभिन्न रूप हैं और अनन्य भक्त स्वयं को सबों का सेवक ही मानता है।

(२) "आगया सम न सुसाहिब सेवा" (२-३०१-भरत

(३) "सीय राममय सब जग जानी। करउँ प्रनाम जोरि जुग पानी" (१-८ — तुलसीदासजी।

२०६०

(४) "जहँ लगि जगत सनेह सगाई।
प्रीति प्रतीति निगम निजु गाई।।
मोरें सबइ एक तुम्ह स्वामी।
दीनबंधु उर अंतरजामी।। (२-७२) - लखन

(५) "एक बानि करुनानिधान की। सो प्रिय
जाकें गति न आन की।। (३-१०) - सुतीक्ष्ण

भूप रूप तब राम दुरावा। हृदयँ चतुर्भुज रूप देखावा। मुनि अकुलाइ उठा तब कैसें। बिकल हीन मनि फनि बर जैसें। (३-१०) सुतीक्ष्ण

(६) "सब कै ममता ताग बटोरी। मम पद मनहि बाँध बरि डोरी।
समदरसी इच्छा कछु नाहीं। हरष सोक भय नहिं मन माहीं"
(५-४८) — श्री राम

(७) "उमा जे राम चरन रत बिगत काम मद क्रोध।
निज प्रभुमय देखहिं जगत केहि सन करहिं बिरोध।।
(७-११२ ख)

(८) मोर दास कहाइ नर आसा। करइ तौ कहहु कहा बिस्वासा
सत गुन ग्राम काम रत गत ममता मद मोह।
ताकर सुख सोइ जानइ परानंद संदोह। (७-४६)

(९) जेहिं जोनि जन्मौं कर्म बस तहँ रामपद अनुरागऊँ। (४-१०) कहते हैं
बालि रघुनाथ से। जिससे जन्म जन्मांतर में अनुरक्तता रहे।

मानस में अखिल काकभुसुंडजी के आख्यान "निर्वेद: सर्वमुक्तेषु" का महत्व बहुत ही उच्च कोटि का है। उनकी जीवन की आत्मकथा उत्तर काण्ड में वर्णित है। पहले जन्म में जब शूद्र जाति में उत्पन्न हुए थे (७-९६) तब भगवान शंकर के उपासक थे दुर्भिक्ष में कुछ काल अवध में निवास कर उज्जैन में जाकर धन कमाया। एक विप्र से शंभु मंत्र प्राप्त किया। उस गुरु ने उपदेश किया कि शिव की सेवा से श्रीराम की भक्ति मिलती है। हर को हरि का सेवक बताने के कारण उन्होंने अपने मन में गुरु से घोर विरोध ठान लिया और अपमान करने के लिये उठकर प्रणाम भी न करते किन्तु गुरु समभावी थे उनको क्रोध नहीं हुआ। शिव मन्दिर में जब यह घटना घटी तब तब शंकर भगवान ने सर्प होने का श्राप दे दिया - शिव-भक्त ने स्तुति कर भगवान

२०६२

शंकर से इनपर कृपा कराकर सहस्र
जन्मों में स्मृति बनी रहने का और राम
अप्रतिहत शांति
भक्ति उपजने का वर दान दिलवाया
(७-१०९) । इसके बाद सब जन्मों में
ये श्री राम का भजन करते रहे (७-११०)
फिर विप्र देह प्राप्त हुई तब लोमश
मुनि के पास सगुण उपासना जानने के
लिये गये किन्तु मुनि निर्गुण उपासना
का उपदेश करते और ये निर्गुण की
जगह सगुण पर अड़े रहे । तब लोमश
मुनि ने कुपित होकर "सपदि होहि
पच्छी चंडाला" शाप दे दिया । किन्तु
तब तक श्री राम-भजन के प्रभाव से
और सगुण राम की अनन्य भक्ति के
कारण काग भुसुण्डी जी "निर्वैरः
सर्व भूतेषु" भावना वाले हो चुके
थे अतः लोमश मुनि को प्रणाम
करके उड़ चले । तब मुनि ने प्रसन्न
होकर इनको राम-मन्त्र दिया और

बालक रूप का ध्यान बताया। चूंकि
काग-देह पाने के बाद इनको यह
ध्यान और मन्त्र मिला। अतः
ये सदैव ही काग-देह में ही रहने लगे।
(७-११४)। शुद्धतन में भगवान शंकर के अनन्य
भक्त होने के प्रसाद स्वरूप जन्म जन्मांतर की
स्मृति बने रहने का और राम भक्ति एवं अप्रति
हत गति का वरदान पाया, और इसके बाद
फिर विप्र देह में श्री राम सगुणरूप की दृढ़
अनन्य भक्ति के प्रभाव से बालक रूप का ध्यान,
और राम-मन्त्र पाया, लोमश मुनि से राम-
चरित-मानस का सुनी, अविरल राम भक्ति,
कामरूप, इच्छा मरण, आदि आदि वरदान पाया
(७-११३)। इतना ही नहीं फिर जब जब भगवान ने
अवतार लिये तब तब अयोध्या जा जाकर पांच
पांच रह कर भगवान की सिसु लीला देखने
का सौभाग्य प्राप्त करते रहे - इतना ही नहीं
शिशु लीला में काग देह धारण किये रह कर
योगदान भी करते रहे, प्रभु की जूठन को

प्रसाद रखते रहे (७-११४, ११५) सचाई इस कल्पों से यही क्रम चलता आ रहा है (७-११४) एक बार प्रभु ने प्रसन्न करके अपने मुख के द्वारा इनको अपने पेट में ले जाकर पेट के अन्दर बसे हुए अनेक ब्रह्मांड आदि अपना विश्वरूप दिखाया। (७-८१)॥ काग भुसुन्डजी का सारा समय ही हरि-भजन में ही बीतता है

पीपर तरु तर ध्यान सो धरई। जाप जग्य पाकरि तर करई॥
आँब छाँह कर मानस पूजा। तजि हरि भजनु काजु नहिं दूजा॥
बर तर कह हरि कथा प्रसंगा। आवहिं सुनहिं अनेक बिहंगा॥
राम चरित बिचित्र बिधि नाना। प्रेम सहित कर सादर गाना॥

(७-५७) यह भुसुण्डीजी की दिनचर्या भगवान शंकर ने स्वयं देखी है और पार्वतीजी को बता रहे हैं (७-५७)॥ इस प्रकार अनन्य भक्ति की रूप-रेखा और महत्ती महत्ता इस उपाख्यान में वर्णित है।

भागवत में तो गोपियों की अनन्यता की कथाएँ दशम स्कन्ध में भरी पड़ी हैं॥

श्रीराम जय राम जय जय राम

सं॰सं॰सं॰ 102 2065

26/9/84 मुचुकुन्द नामी मेर

इक्ष्वाकु में महाराज मान्धाता के पुत्र महाराज मुचुकुन्द थे। एक बार देवताओं द्वारा प्रार्थना करने पर बहुत समय तक दैत्यों से उनकी रक्षा की थी। उस कार्य से निवृत्त होने पर देवताओं ने इन्हें इनकी इच्छानुसार दीर्घ काल तक गाढ़ी निद्रा का वर दिया और कहा "जो मूर्ख तुम्हें सोते को जगावेगा वह तुरन्त भस्म हो जायेगा" तब मुचुकुन्द एक गुफा में गाढ़ी नींद में सो गये।

एक बार द्वापर में कालयवन श्री कृष्ण का पीछा करते करते वहीं आ पहुंचा और कृष्ण ही सामने सोये हैं ऐसा समझ कर सोये हुए मुचुकुन्द को लात से मारा। उनके नेत्र खोल कर देखते ही कालयवन भस्म हो गया।

2066

मधुसूदन भगवान श्री कृष्ण ने चतुर्भुज धारण कर मुचुकुन्द को दर्शन दिया और वर दिया "तुम में तुम्हारी अनपायिनी भक्ति बनी रहे। क्षत्रिय होने के कारण हुए जीवों के वध-जनित पाप को तप द्वारा क्षीण करो। अगले जन्म में तुम ब्राह्मण होंगे उस समय तुम कैवल्य-स्वरूप परमात्मा को अवश्य प्राप्त होगे" (भागवत स्कं. १० अ. ५१ श्लो. ६४)

इसके बाद, भगवत्कृपा के अनुसार मुचुकुन्द विप्र तन धारण कर भगवान को प्राप्त किये। विख्यात कृष्ण-भक्त विप्रों के तीन नाम सामने आते हैं।

(१) सुदामाजी - ये श्री कृष्ण के समकालीन और सहपाठी थे अतः मुचुकुन्द के तप करने के बाद अगले जन्म में सुदामा होने का बात ठीक बैठती नहीं।।

(२) सूरदास जी - ये सारस्वत ब्राह्मण थे, भक्त और कवि बहुत ही ऊँचे दर्जे के थे। नेत्र हीन थे - इनके रचे भजन (पद्य) बड़े मानमीने थे - किन्तु ऐतिहासिक दृष्टि से विशेष जानकारी भक्तमाल तक को नहीं प्राप्त है कि इन्होंने भगवान को विशेष रूप से प्राप्त किया हो।

(३) नरसी मेहता (नरसिंह मेहता) —

विक्रम संवत् ~~[illegible]~~ की

इनका जन्म सोलहवीं शताब्दी के प्रथम में गुजरात प्रान्त के जूनागढ़ नगर में नागर-ब्राह्मण कुल में हुआ था। नागर ब्राह्मण बहुत प्रतिष्ठित और कुलीन समझे जाते हैं। *बचपन में माता पिता का स्वर्गवास हो गया फिर अपनी भाभी से भोजन में नमक मांगने पर तिरस्कार पाकर से इन्होंने घर छोड़ ~~और~~ दिया/ वृन्दावन में जाकर श्रीव्रजबिहारी का पल्ला पकड़ा और अन्त तक उसी दिव्य प्रेम का आनंद लेते रहे। कहते हैं:— पृष्ठ 2073 को देखें

* पृष्ठ 2073 में देखें

22068

* पृ 2073 से देखें 2075 तक

(क) वृन्दावन में श्रीकृष्ण ने साक्षात् दर्शन दिये और गोपियों की रास-क्रीड़ायें भी दिखाईं

* पृष्ठ 2074 में देखें (ख)

(ख) इनकी लड़की नाबीनाई थी, यहाँ भगवान ने श्री कृष्ण रुक्मिणी जी के साथ पधारे थे और उसकी आँखें [illegible] भर आया और समाधि [illegible] तक हुई थी।

(ग) पृष्ठ 2076 में देखें

(घ) अपने लड़के के विवाह में अपने शिष्य २-४ साधु संतों को साथ बरात में लेकर ये जा रहे थे तब मार्ग में भगवान ने एक बहुत बड़ी बरात उनके संग कर दी और स्वयं भी घोड़े पर चढ़कर उनके संग गये। लड़की वालों ने बड़ी बरात के लिये इन्तजाम करने में अपनी असमर्थता प्रकट करते हुए अपनी लाज बचाने की प्रार्थना की तब भगवान ने स्वयं सारा इन्तजाम कर दिया। ४-५ दिन बरात रही पर खर्च कहाँ से हुआ किसी को पता भी नहीं चला।

(ङ) पृष्ठ 2077 में देखें

२०६९

(घ) एक बार घर पर आये साधु के सत्कार के
लिये घर में कुछ भी नहीं होने के कारण इन्होंने
अपनी केदार राग को गिरवी रख कर
रुपये लाकर साधुओं की सेवाएँ कीं। इस
केदार से जब गाते तो भगवान की मूर्ति
के गले की माला खसक पड़ती। किन्तु
गिरवी रखने के कारण उन्होंने केदार
गाना बन्द कर दिया। ~~एक बार~~ दूसरे दिन इनके विरोधी
ने इन्हें नीचा दिखाने की योजना बनाकर कीर्तन
कराया पर केदार राग के बिना माला नहीं
खसकी तब भगवान गिरवी का चुकता
भुगतान करके नरसी को वृद्ध महाजन का
रूप धारण कर बता दिया। इस पर जब नरसी ने
केदारा गाना शुरू किया तब माला भगवान के
गले से आकर नरसी के गले में गिरी।।
समाज धन्य धन्य कह उठा।

(ङ) एक बार दो संन्यासी भगवान का दर्शन करने
की इच्छा से शासक को इनके विरुद्ध भड़काया
उसने अपनी सभा में बुलाकर कीर्तन करने नरसी को

बुलवाया। सदा ही कीर्तन के समय प्यासी इस को दो लड़कियाँ इनको पानी पिलाया करती थी, उन दोनों को कमरे में ताले में बन्द कर दिया गया। किन्तु लड़कियाँ कमरे के अन्दर कीर्तन करने लगी और पानी पिलाने के निश्चित समय पर वही गिलास में पानी लिये दे रही हैं यह मुद्रा भी देखा भगवान उस लड़की का वेश धारकर नरसी को पानी पिलाने सभा में आये। लड़की का भाई भाग कर घर गया तो देखा बहन पानी का गिलास ले करके नरसी को पानी देने की मुद्रा में। ताला खोल देने पर लड़की जब गिलास लिये सभा में आई तब उस लड़की के वेषधारी भगवान अंतर्धान हो गये। दोनों संन्यासी अपने को धन्य मानते हुए काशी लौट आये।

(ज) एक बार साधुओं की एक जमात द्वारका जाते समय जूनागढ़ आयी। उनको हुण्डी करानी थी किसी दिल्लगीबाज ने उन्हें नरसी के पास भेज

दिया। इन्होंने नरसी से हुंडी लिखने की प्रार्थना की। नरसी के मना करने पर उसके पैरों पर पड़ कर हठ करने लगे। तो परवश हो नरसी को हुंडी लिखनी पड़ी। और द्वारका के महाजन का नाम "साँवलिया शाह" लिख दिया। द्वारका में साधुओं को इस नाम के सेठ का कहीं पता नहीं चला। तब एक जगह बैठ कर नरसी को भली बुरी सुना रहे थे इतने में भगवान एक महाजन का वेश बनाकर वहाँ आ पहुंचे और हुंडी का चुकता भुगतान कर दिया। और उनके द्वारा नरसी को सन्देश भेजवा दिया कि जब कोई काम पड़ा करे तब निसंकोच लिख भेजा करें। वापसी यात्रा पर जमात जूनागढ में नरसी को सारा संदेश सुनाया। सुनकर नरसी बहुत प्रसन्न हुए और प्रभु की असीम अनुकम्पा स्मरण करके रोने लगे। जाने समय भगवान द्वारा दिये हुए सारे रुपयों से साधुओं को भोजन करा दिया।

(क) पृष्ठ २०७क में देखें।

२०१२

हिमु लिखित साथ ही पृष्ठ २०४७ में आया

इस प्रकार नरसी के सम्पर्क में अवेकों आने के कारण भगवान श्री कृष्ण के अपरोक्ष में दर्शन हुए हैं। यह है भगवत् भक्तों के दर्शन की महत्ता।

उपरोक्त तथ्यों के आधार पर तो।

प्रभु की लीला तो प्रभु ही जाने। इस दास की मत से तो मुकुन्दजी ने आगामी जन्म में नरसी मेहता ही होकर ब्राह्मण कुल में सम्भवतः जन्म ले कर श्री कृष्ण भगवान को प्रचुर रूप में प्राप्त किया है।

भगवान और उनके भक्तों की जय जय जय हो

श्री राम जय राम जय जय राम

* पृष्ठ 2067 में आयगा।

नरसी जी का जन्म साके सालीवहन की 1570 सं में जूनागढ़ में हुआ था। ये जन्म से गूँगे थे। आठ की अवस्था हुई तब इनकी दादी जय कुँवरी की एक महात्मा से मुलाकात हो गयी। दादी की प्रार्थना करने पर महात्मा इनके कान में फूँक देकर कहा "बच्चा, कहो राधे कृष्ण राधे कृष्ण" और तब ये राधे कृष्ण राधे कृष्ण कहने लगे। इस प्रकार इनकी बोली खुल गयी।

नौ वर्ष की उम्र में माणिक गौरी नामी सात वर्ष की बालिका से इनका विवाह दादी ने करा दिया। सोलह वर्ष की अवस्था में इनकी पत्नि के एक कन्या उत्पन्न हुई फिर दो वर्ष बाद एक पुत्र (शामल दास) उत्पन्न हुआ। पुत्री कुंवरी बाई (नानी बाई) का विवाह दादी के जीवन काल में ही हो गया।

* (क) पृष्ठ 2068 में आयगा।

भाई भावज द्वारा घर से निकाल दिये जाने पर अपने परिवार वहीं छोड़